गांधीजी को श्रद्धांजलि

विनोबा

●

१९५६
सत्साहित्य-प्रकाशन

प्रकाशक

मार्तण्ड उपाध्याय

मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,

नई दिल्ली

चौथी बार : १९५६

कुल छपी प्रतियां : २३०००

मल्य

चालीस नये पैसे

मुद्रक

हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस

दिल्ली

प्रकाशकीय

इस पुस्तक में विनोबाजी के वे प्रवचन संग्रहीत हैं, जो गांधीजी के निधन के बाद के तेरह दिनों में, ३१ जनवरी १९४८ से १२ फरवरी १९४८ तक, उन्होंने परंधाम (पवनार) और गोपुरी (नालवाड़ी) की प्रार्थना-सभाओं में दिये थे। अन्त में वे तीन प्रवचन भी दिये गये हैं, जो उन्होंने उन्हीं दिनों सेवाग्राम-आश्रम की प्रार्थना-सभाओं में दिये थे।

चौथा संस्करण

पुस्तक का यह चौथा संस्करण पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करते हुए हमें बड़ा हर्ष हो रहा है। पुस्तक स्थायी महत्व की है। हमें आशा है, इसकी लोकप्रियता आगे भी बराबर बढ़ती जायगी।

—मंत्री

विषय-सूची

: १ :

गांधीजी का बलिदान

मेरे प्यारे भाइयो और बहनो,

अभी इस समय दिल्ली में जमना नदी के किनारे पर एक महान् पुरुष की देह अग्नि में जल रही है। हम यहां जिस तरह अब प्रार्थना कर रहे हैं उसी तरह हिन्दुस्तान भर में प्रार्थना चल रही है। कल के ही दिन! शाम के पाँच बज गये थे। प्रार्थना का समय हुआ और गांधीजी प्रार्थना के लिए निकले। प्रार्थना के लिए लोग जमा हुए थे। गांधीजी प्रार्थना की जगह पहुँचे ही थे कि किसी नौजवान ने आगे झपटकर गांधीजी की देह पर गोलियाँ चलाईं। गांधीजी की देह गिर पड़ी। खून की धारा बहने लगी। बीस मिनटों के बाद देह का जीवन समाप्त हुआ। थोड़े ही समय पहले सरदार वल्लभभाई पटेल एक घंटा तक उनसे चर्चा करके घर लौट रहे थे। रास्ते में ही उन्हें खबर मिली और वे लौट आये। बिड़ला हाउस में पहुँचने पर जो दृश्य उन्हें दिखाई दिया उसका वर्णन उन्होंने कल रेडियो पर किया। वह आपमें से बहुतों ने सुना ही होगा। लेकिन यहाँ देहात से भी कुछ भाई आये हैं, उन्होंने वह नहीं सुना होगा। सरदार वल्लभभाई ने एक बात बड़े महत्त्व की कही। वह

यह कि गांधीजी के चेहरे पर दया-भाव तथा माफी का भाव, यानी अपराधी के प्रति क्षमावृत्ति, दिखाई देती थी। आगे चलकर वल्लभभाई ने कहा कि इस समय कितना ही दुःख क्यों न हुआ हो, गुस्सा नहीं आने देना चाहिए और यदि आये भी तो उसे रोकना चाहिए। गांधीजी ने जो चीज हमें सिखाई उसका अमल उनके जीते जी हम नहीं कर पाये। लेकिन अब उनकी मृत्यु के बाद तो करें।

ऐसी ही घटना पांच हजार साल पहले हिन्दुस्तान में घटी थी। भगवान श्रीकृष्ण की उमर ढल गई थी। जीवनभर उद्योग करके वे थक गये थे। गांधीजी की तरह उन्होंने जनता की निरंतर सेवा की थी। थके हुए एक बार जंगल में वे किसी पेड़ के सहारे आराम ले रहे थे। इतने में एक व्याध यानी शिकारी, उस जंगल में पहुँचा। उसे लगा कि कोई हिरन पेड़ के सहारे बैठा है। शिकारी जो ठहरा! उसने लक्ष्य साधकर तीर छोड़ा। तीर भगवान के पांव में लग कर खून की धारा बहने लगी। शिकारी अपना शिकार पकड़ने के इरादे से नजदीक आया। लेकिन सामने प्रत्यक्ष भगवान को जख्मी पाया। उसे बड़ा दुःख हुआ। अपने हाथों से बड़ा पाप हुआ ऐसा सोचकर वह दुखी हुआ। भगवान श्रीकृष्ण तो थोड़े ही समय में चल बसे। लेकिन मरने के पहले उन्होंने उस व्याध से कहा, "हे व्याध! डरना नहीं। मृत्यु के लिए कुछ-न-कुछ निमित्त लगता ही है। तू निमित्त बन

गया।" ऐसा कह कर भगवान ने उसे आशीर्वाद दिया।

इसी तरह की घटना पाँच हजार वर्षों के बाद फिर से घटी है। यों देखने में तो ऐसा दिखाई देगा कि उस व्याध ने अज्ञानवश तीर मारा था, यहाँ इस नौजवान ने सोच-समझ कर, गांधीजी को ठीक पहचान कर, पिस्तौल चलाई। इसी काम के लिए वह दिल्ली गया था। वह दिल्ली का रहनेवाला नहीं था। गांधीजी के प्रार्थना के लिए जाते हुए वह उनके पास पहुँचा और बिल्कुल नजदीक जाकर उसने गोलियाँ छोड़ीं। ऊपर से यों दिखाई देगा कि गांधीजी को वह जानता था। लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं था। जैसा वह व्याध अज्ञानी, वैसा ही यह युवक भी अज्ञानी था। उसकी यह भावना थी कि गांधीजी हिन्दूधर्म को हानि पहुँचा रहे हैं और इसलिए उसने उनपर गोलियाँ छोड़ीं। लेकिन दुनिया में आज हिन्दूधर्म का नाम यदि किसी ने उज्ज्वल रखा तो वह गांधीजी ने ही रखा है। परसों उन्होंने खुद ही कहा था कि "हिन्दूधर्म की रक्षा करने के लिए किसी मनुष्य को नियुक्त करने की जरूरत यदि भगवान को महसूस हुई तो इस काम के लिए वह मुझे ही नियुक्त करेगा।" इतना आत्मविश्वास उनमें था। उन्हें जो सत्य मालूम होता था, वह वे साफ—सीधे कह देते थे। बड़े लोग अपनी रक्षा के लिए 'बाडी गार्ड' यानी देह-रक्षक रखते हैं। गांधीजी ने ऐसे देह-रक्षक कभी नहीं रखे।

देह को वे तुच्छ समझते थे। मृत्यु के पहले ही वे मरकर रहे थे। निर्भयता उनका व्रत था। जहां किसी फौज को भी जाने की हिम्मत न हो वहां अकेले जाने की उनकी तैयारी थी।

जो सत्य है, लोगों के हित का है, वही कहना चाहिए; फिर भले किसी को अच्छा लगे, बुरा लगे, या उसका परिणाम कुछ भी निकले, ऐसी उनकी वृत्ति थी। वे कहते थे—"मृत्यु से डरने का कोई कारण ही नहीं है; क्योंकि हम सब ईश्वर के ही हाथ में हैं। हमसे जबतक वह सेवा लेना चाहता है तबतक लेगा और जिस क्षण वह उठा लेना चाहेगा उस क्षण उठा लेगा। इसलिए जो सत्य लगता है, वही कहना हमारा धर्म है। ऐसे समय यदि मैं शायद अकेला भी पड़ जाऊं और सारी दुनिया मेरे खिलाफ हो जाय तो भी मुझे जो सत्य दिखाई देता है वही मुझे कहना चाहिए।" उनकी इस तरह की निर्भीकतापूर्ण वृत्ति रही। और उनकी मृत्यु भी किस अवस्था में हुई! वे प्रार्थना की तैयारी में थे। यानी उस समय उनके चित्त में भगवान के सिवा दूसरा विचार नहीं था। उनका सारा जीवन ही हमने सेवामय तथा परोपकारमय देखा है; परन्तु फिर भी प्रार्थना की भावना और प्रार्थना का समय विशेष पवित्र कहना चाहिए। राजनैतिक आदि अनेक महत्त्व के कामों में वे रहते थे। लेकिन उनकी प्रार्थना का समय कभी नहीं टला। ऐसे प्रार्थना के समय ही

देह में से मुक्त होने के लिए मानो भगवान ने आदमी भेजा। अपना काम करते हुए मृत्यु हुई इस विषय का उनके दिल का आनन्द और निमित्त मात्र बने हुए गुनहगार के प्रति दयाभाव, इस तरह का दोहरा भाव उनके चेहरे पर मृत्यु के समय था, ऐसा सरदारजी को दिखाई दिया।

गांधीजी ने उपवास छोड़ा उस समय देश में शांति रखने का जिन्होंने वचन दिया उनमें कांग्रेस, मुसलमान, सिख, हिन्दू महासभा, राष्ट्रीय स्वयंसेवक-दल आदि सब थे। हम प्रेम के साथ रहेंगे, ऐसा उन्होंने वचन दिया और लोग उस तरह रहने भी लगे थे कि एक दिन प्रार्थना-सभा में गांधीजी को लक्ष्य करके किसी ने बम फेंका। वह उन्हें लगा नहीं। उस दिन प्रार्थना में गांधीजी ने कहा, "मैं देश की और धर्म की सेवा भगवान की प्रेरणा से करता हूं। जिस दिन मैं चला जाऊं, ऐसी उसकी मर्जी होगी उस दिन वह मुझे ले जायगा। इसलिए मृत्यु के विषय में मुझे कुछ भी विशेष नहीं मालूम होता है।" दूसरा प्रयोग फल हुआ। भगवान ने गांधीजी को मुक्त किया।

हम सब देह छोड़कर जानेवाले हैं। इसलिए मृत्यु के विषय में तनिक भी दुःख मानने का कारण नहीं है। माता की अपने दो-चार बच्चों के विषय में जो वृत्ति रहती है वह दुनिया के सब लोगों के विषय में गांधीजी की थी। हिन्दू, हरिजन, मुसलमान,

ईसाई और जिन राज्यकर्ताओं से लड़े वे अंग्रेज, इन सबके प्रति उनके दिल में प्रेम था। सज्जनों पर जिस तरह प्रेम करते हैं वैसे दुर्जनों पर भी करो, शत्रु को प्रेम से जीतो, ऐसा मंत्र उन्होंने दिया। उन्होंने ही हमें सत्याग्रह सिखाया। खुद आपत्तियां झेलकर सामनेवालों को जरा भी खतरा न पहुँचे यह शिक्षा उन्होंने हमें दी। ऐसा पुरुष देह छोड़ कर जाता है तब वह रोने का प्रसंग नहीं होता। माँ हमें छोड़कर जाती है उस समय जैसा लगता है वैसा गांधीजी के मरने से लगेगा जरूर; लेकिन उससे हममें उदासी नहीं आनी चाहिए।

एकनाथ महाराज ने भागवत में कहा है, "मरने वाले गुरु का और रोने वाले चेले का—दोनों का बोध व्यर्थ गया।" एक मृत्यु से डरने वाला गुरु। मृत्यु के समय वह कहने लगा, "अरे, मैं मरता हूं।" तब उसके शिष्य भी रोने लगे। इस तरह गुरु मरनेवाला और चेला रोनेवाला दोनों ने ही जो बोध (ज्ञान) प्राप्त किया था वह फजूल गया, ऐसा एकनाथ महाराज ने कहा है।

गांधीजी मृत्यु से डरनेवाले गुरु नहीं थे। जिस सेवा में निष्काम भावना से देह लगाई जाय वह सेवा ही भगवान की सेवा है। वह करते हुए जिस दिन वह बुलायेगा उस दिन जाने के लिए तैयार रहें, ऐसी सिखावन उन्होंने हमें दी। तदनुसार ही उनकी मृत्यु हुई। इसलिए यह उत्तम अंत हुआ, ऐसा हम पहचान लें और काम करने लग जायं।

कुछ दिन पहले ही आश्रम के कुछ भाई गांधीजी से मिलने गये थे। उस समय उनका उपवास जारी था। उपवास में वे जिंदा रहेंगे या मर जायंगे इसका किसको पता था ? आश्रम के भाइयों ने उनसे पूछा—"आप यदि इस उपवास में चल बसे तो हम कौन-सा काम करें?" गांधीजी ने जवाब दिया—"इस तरह का सवाल ही आपके सामने कैसे खड़ा हुआ ? मैंने तो आपके लिए काफी काम रक्खा है। हिंदुस्तान में खादी करनी है। खादी का शास्त्र बनाना है। इतना बड़ा काम आपके लिए होते हुए 'क्या करें ?' ऐसी चिंता क्यों होती है ?"

इसलिए हमारे लिए उन्होंने जो काम रख छोड़ा, वह हमें पूरा करना चाहिए। असंख्य जातियां और जमातें मिलकर हम यहां एक साथ रहते हैं। चालीस करोड़ का अपना देश है, यह हमारा बड़ा भाग्य है; लेकिन एक-दूसरे से प्रेम करते हुए रहेंगे तभी वह होगा। इतना बड़ा देश होने का भाग्य शायद ही मिलता है। हमारे देश में अनेक धर्म हैं, अनेक पन्थ हैं। मैं तो, यह हमारा वैभव है यह समझता हूँ। लेकिन हम सब प्रेम के साथ रहेंगे तभी यह वैभव सिद्ध होगा। हम प्रेम से रहें, यही गांधीजी ने अपने अंतिम उपवास से हमें सिखलाया है। बच्चे एक-दूसरे के साथ प्रेम से रहें इसलिए जिस तरह माता भोजन छोड़ देती है, वैसा ही उनका वह उपवास था। सारे मनुष्य एकसे हैं यह उन्होंने हमें सिखाया। हरिजन-सेवा, खादी-सेवा, ग्राम-

सेवा, भंगियों की सेवा आदि अनेक सेवा-कार्य हमारे लिए वे छोड़ गये हैं ।

अब इस समय मैं अधिक कहना नहीं चाहता हूं । सबके दिल एक विशेष भावना से भरे हुए हैं । लेकिन मुझे कहना यह है कि केवल शोक करते न बैठें; हमारे सामने जो काम पड़ा है उसमें लग जायं । यह जो मैं आपको कह रहा हूँ वैसा ही आप मुझे भी कहें । इस तरह एक-दूसरे को बोध देते हुए हम सब गांधीजी के बताये काम करने लग जायं । गीता में और कुरान में कहा है कि भक्त और सज्जन एक-दूसरे को बोध देते हैं और एक-दूसरे पर प्रेम करते है । वैसा हम करें । आज तक बच्चों की तरह हम कभी-कभी झगड़ते भी थे । हमें वे सम्भाल लेते थे । वैसा सबको सम्भालने वाला अब नहीं रहा है । इसलिए एक-दूसरे को बोध देते हुए और एक-दूसरे पर प्रेम करते हुए हम सब मिलकर गांधीजी की सिखावन पर चलें ।

३१ जनवरी '४८] [प्रार्थना-सभा : परंधाम

: २ :

सामुदायिक प्रार्थना

मेरी आज कुछ अधिक कहने की इच्छा नहीं है । सिर्फ एक बात कहना चाहता हूँ । हिन्दुस्तान के ऐतिहासिक काल में जो घटना शायद कभी नहीं हुई

थी सो अब वह घटी है। हिंदू-धर्म में कभी किसी सत्पुरुष की हत्या नहीं हुई, यह एक मेरा अभिमान था; पर वह अभिमान अब मिट्टी में मिल गया है। एक सत्पुरुष की हत्या हुई है और वह भी ठीक ऐसा समय ढूँढ़ कर, जबकि वे प्रार्थना के लिए निकले थे, और इस खयाल से कि उससे हिंदू-धर्म की रक्षा होगी। ये तीनों बातें सोचता हूँ तो अत्यन्त लज्जा होती है।

कल मैंने कहा था, "हमें रोनेवाले शिष्य नहीं बनना है।" इसलिए मैं रोता तो नहीं हूं, पर कुछ सूझ नहीं रहा है। इसलिए आज जब मुझे कहने आये कि १३ दिन तक गोपुरी में सार्वजनिक प्रार्थना रखना चाहते हैं और उसमें मैं हाजिर रहूँ तो मैंने उसे सहज ही स्वीकार किया।

मुझे तो बापू के जीवन के लिए यह उत्तम पूर्णाहुति मालूम होती है। धर्म में बतलाया है कि सर्वोत्तम विचार करते हुए देह छोड़ना पुण्य की परिसीमा है। जिसने जीवन भर निरंतर धर्म-पालन का प्रयत्न किया है, वह अपना दिन का पवित्र कार्य पूरा करके प्रार्थना के लिए जा रहा है, मित्रों के साथ जा रहा है, सबको प्रार्थना के लिए बुला रहा है, और उसी समय उसका अन्त होता है! यह मृत्यु बहुत पावन है। इसका अगर हम पूरा अर्थ समझ लें तो उससे धर्म की शुद्धि होगी और देश का भला होगा।

प्रार्थना के लिए यह शाम का समय बहुत अच्छा मिल गया है। दिन भर काम करके शाम को अगर

हमारा ध्यान भगवान में लग जाता है तो हमारा काम पूरा हो जाता है। जहां भी हम हैं, हमें सामुदायिक प्रार्थना को नहीं भूलना चाहिए। प्रार्थना में अपना पूरा चित्त लगा दें। उससे चित्त का सारा मैल धुल जायगा। प्रार्थना में अद्भुत शक्ति है। उससे चित्त में बिजली जैसा संचार होता है। इस प्रार्थना के साथ अब हमेशा गांधीजी का स्मरण रहेगा। भगवान ने नारद से कहा, "नाहं वसामि वैकुण्ठे"—वैकुण्ठ जैसे उत्तम स्थान में भी मैं कभी न रहूँ; "योगिनां हृदये अपि"—योगियों के हृदय में भी, जो कि एकान्त में ध्यान करते हैं, न रहूं; "रवौ"—यानी सूर्य-मंडल में, सूर्य जैसे प्रकाश-स्थान में भी कभी न रहूं; "मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद"—जहां भक्त एकत्र होकर गायन करते हैं वहाँ मैं अवश्य रहता हूँ। ठीक इसी तरह गांधीजी कह रहे हैं कि "किसी उत्तम स्थान में मैं न रहूँ, पर जहां प्रार्थना होती है वहां मैं अवश्य रहूंगा।" मेरे कान उनकी यह बात सुन रहे हैं।

१ फरवरी '४८] [प्रार्थना-सभा : गोपुरी

: ३ :

हमारी जिम्मेदारी

सरदार वल्लभभाई ने जो वक्तव्य दिया था उसमें उन्होंने जनता को यह सूचना दी थी कि

जो दुर्घटना घटी है, उसपर दुःख तो अपार होता है और गुस्सा भी आ सकता है, पर हमें गुस्सा रोकना चाहिए। लेकिन यह तो तब बनेगा जब हम महसूस करेंगे कि गुस्से में शक्ति नहीं है, शान्ति में ही शक्ति है, और जब यह विश्वास दृढ़ हो जायगा कि हिंदुस्तान-जैसे राष्ट्र-समूह-तुल्य देश में अगर हिंसा को मान्यता मिली तो स्वराज्य नहीं रह सकता है। जो दुष्कृत्य हुआ है उसके पीछे एक हिंसक विचार-श्रेणी है और हिंसक विचार-श्रेणी को हम हिंसा से नहीं तोड़ सकते। उसे तो अहिंसा ही से तोड़ सकते हैं। लेकिन अब तक हिन्दुस्तान में अहिंसा का जो पालन हुआ है वह बहुत कुछ लाचारी का था और स्वराज्य प्राप्ति में उससे मदद होगी ऐसे लोभ से उसका स्वीकार किया गया था। पर अब वह बात नहीं रही है। इसके आगे अब ऐसी लाचार व दुबली हिंसा का कोई प्रयोजन नहीं रहा है। अब तो वीर्यशाली अहिंसा ही हमें सीखनी चाहिए। उसके लिए भगवान ने यह प्रसंग खड़ा किया है। इसपर हमें गम्भीरता से सोचना चाहिए। जिन्होंने यह अविचार किया है (यहां मैंने बहुवचन का प्रयोग जानबूझकर किया है, क्योंकि यह किसी एक आदमी का काम नहीं है। इसके पीछे एक गिरोह है) उन्होंने उचित कार्य समझकर इसे किया है। उचित कार्य के लिए हिंसा मान्य हो सकती है, धर्म भी हो सकता है, इस तरह की मान्यता जब-तक है तबतक ऐसे घृणित कार्य होते रहेंगे। अगर

हम अपने हृदय का शोधन करेंगे तो उसमें भी शायद हमें कुछ ऐसे भाव छिपे हुए मिलेंगे। हमारे हृदय में अगर यह दोष थोड़ा-सा भी रहा तो सृष्टि में वह सौ गुना बनकर उपस्थित होने वाला है। गुस्से को हम रोकें, इतना काफी नहीं है, हमें प्रेम करना सीखना चाहिए। जीवन में हमें वैसा परिवर्तन करना चाहिए। अबतक बापू थे तो वे हम लोगों को ढांकते थे। पर अब हम दुनिया के सामने खड़े हैं। अब अगर हमें कोई ढांक सकता है तो हमारा सद्विचार और सदाचार ही ढांक सकता है। आज तुलसीदासजी का जो वचन हमने गाया उसमें बतलाया है कि हमें तो चंदन बनना चाहिए। चन्दन को कुठार काटता है, पर चंदन उलटे सुगन्ध ही देता है। अर्थात् हम गुस्सा न करें, इतना काफी नहीं है, अहिंसा की निष्ठा बढ़ाना, सत्य की निष्ठा बढ़ाना, प्रेम-भाव बढ़ाना जरूरी है।

हमने इतिहास में देखा है कि ईसा के शिष्य, जब ईसा जिन्दा था, कोई विशेष तेज नहीं दिखाते थे। लेकिन ईसा की मृत्यु के बाद उनमें एक महान् तेज उत्पन्न हुआ और सब संकटों को झेल कर उन्होंने धर्म-प्रचार किया। उसीका नतीजा है कि आज दुनिया में करोड़ों क्रिश्चियन हैं। मैं कबूल करता हूं कि वे क्रिश्चियन नाममात्र के हैं। वैसे हिन्दू और मुसलमान भी नाममात्र के ही हैं। पर उस-उस धर्म का नाम लेने वाले भी इतनी तादाद में पड़े हैं, तो उसमें

कुछ सद्भाव तो समझना चाहिए। और अपना श्रेय उन शिष्यों को देना चाहिए। शिष्यों में जो तेज पैदा हुआ उनका श्रेय इतिहास ईसा के बलिदान को ही देता है। गांधीजी की हत्या हुई, इस हेतु अगर हम गुस्से में आगये और विवेक खो दिया तो हम गांधीजी की हत्या में सहभागी होंगे और तेजहीन बनेंगे। इसलिए देह की चिन्ता छोड़कर अगर हम चिन्तनपूर्वक अपने चित्त के दोषों को धो डालेंगे और नये मनुष्य बनेंगे तो बहुत कार्य कर सकेंगे। उसके लिए किसी संघटना की जरूरत नहीं है, किसी रचना की जरूरत नहीं है; लेकिन तीव्र अन्तःशोधन की जरूरत है। उसके लिए तीव्र-से-तीव्र चालना बाहर से जितनी दी जा सकती है, भगवान ने हमें दी है।

२ फरवरी '४८] [प्रार्थना-सभा : शांतिकुटीर, गोपुरी

: ४ :

वर्धा के नागरिकों से

वर्धा के मेरे नागरिको,

आज अधिक कहने की मुझे प्रेरणा नहीं होती; लेकिन आपके लिए एक-दो बातें कहना चाहता हूँ। आपका और मेरा सम्बन्ध पच्चीस सालों का है। गांधीजी हमारे इस गांव में पन्द्रह साल रह चुके हैं। ऐसी स्थिति होने के कारण हमारे ऊपर बहुत बड़ी जिम्मे-

दारी आ जाती है। जहां गांधीजी पन्द्रह साल बितायें वहां उनकी सिखावन का असर तो जरूर दिखाई देना चाहिए। सारा हिन्दुस्तान नहीं सारी दुनिया—यही अपेक्षा रखेगी—यह जानकर हमें अपना जीवन सुधारना चाहिए।

पहली बात तो यह कहनी है कि हिन्दुस्तान में अनेक जातियां, अनेक धर्म, अनेक भाषाएँ आदि असंख्य भेद हैं; लेकिन वे भेद हमें नहीं मानने चाहिए, सबके साथ हमें सगे भाई का-सा बर्ताव करना चाहिए। खास करके नौजवानों को और विद्यार्थियों को लक्ष्य करके मैं यह कहता हूं। हिन्दुस्तान का संदेश यदि दुनिया में पहुंचे ऐसा हम चाहते हैं तो यहाँ से सारे भेद-भाव हमें मिटाने चाहिए। हमारे परम पूज्य कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है कि हिन्दुस्तान "मानवों का एक महासागर है।" प्राचीन काल से हिन्दुस्तान ने सारे मानवों को समान आश्रय प्रेम के साथ दिया है। महापुरुषों ने उसका ऐसा गुणगान किया है। सब लोगों को भेदभाव भूलकर एकदिल से और प्रेम से कैसे रहना चाहिए, इसका आदर्श बता देने-वाला महापुरुष हमें मिला, यह हमारा भाग्य है। ऐसा महापुरुष हजारों वर्षों के बाद कभी मिल जाता है। इसलिए हमें गुटबन्दी बनाना छोड़ देना चाहिए। गुटबन्दी बनाने का मतलब यह होगा कि पहले ही द्विखंड बने हिन्दुस्तान को शतखंड करना। हिन्दुस्तान का प्रेम का और ऐक्य का सन्देश दुनिया भर में

फैले, ऐसी यदि इच्छा है तो पहले हिन्दुस्तान को एक रूप देना चाहिए। एशिया की आँखें हिन्दुस्तान की ओर लगी हैं। लेकिन आज हिन्दुस्तान में असंख्य भेदों के बारूदखाने भरे पड़े हैं। एक चिनगारी उसमें पड़ जाय तो किसी भी क्षण उसका धड़ाका हो जायगा। ऐसी स्थिति है। इसलिए हमारे लोगों को सब प्रकार के पंथ-भेद मिटाकर एक हो जाना चाहिए। उसीमें हमारा भला है।

इस विषय में पानीपत की लड़ाई की एक कहानी कहता हूं, वह ध्यान में रखिए। एक दिन सन्ध्या के समय अहमदशाह अब्दाली अपने पड़ाव से बाहर घूमने निकला तो उसकी नजर मराठों के पड़ाव की ओर गई। वहां उसे जगह-जगह आग दिखाई दी। उसने अपने साथी से पूछा, "जगह-जगह यह आग कैसी ?" उसे जवाब मिला कि हिन्दुओं में अनेक जातियाँ हैं। वे एक-दूसरे के हाथ का नहीं खाते। इसलिए वे अलग-अलग पका कर खाते हैं। यह सुनकर वह बोला, "फिर कोई चिन्ता नहीं है। मैंने यह लड़ाई जीत ली समझो !" इसपर से समझ लो कि हमारी ताकत किस चीज में है और कमजोरी किस चीज में है।

दूसरी एक बात कहनी है। आप अपने हाथों में कानून न लीजिए। अपराधियों का समुचित शासन सरकार करेगी, ऐसा भरोसा रखिये। आप वह काम करना चाहेंगे तो यहां अराजकता फैल जायगी। ऐसा

न कीजिए। सरकार से सहकार कीजिए और उसके हाथ मजबूत बनाइये। लोग यदि अपने हाथों में कानून लेकर स्वैर (स्वेच्छाचारी) बर्ताव करने लगेंगे तो कोई भी सरकार टिक नहीं सकेगी।

३ फरवरी '४८] [प्रार्थना-सभा : गांधी चौक

: ५ :

खादी : मध्यबिन्दु

आज तो एक ही बात मैं कहना चाहता हूं। बापू ने हमारे सामने जो विचार-श्रेणी रखी है उसका स्थूल मध्यबिन्दु खादी है। बाकी का सारा उसके इर्द-गिर्द बिठाया है। अभी हाल में आश्रम वालों ने जब उनसे सन्देश मांगा तो उन्होंने यही बताया कि तुमको खादी का शास्त्र रचना है और उसीमें अपना जीवन लगा देना है। अब बापू के जाने के बाद हमारे लिए उनकी मूर्ति—अगर मेरे इस शब्द का गलत अर्थ न किया जाय तो—खद्दर ही है। हम जैसा चाहते हैं, वैसा खादी-जीवन हमारे यहां भी नहीं है! ग्राम-सेवा-मण्डल में मजदूर हैं, कुटुम्बी कार्यकर्ता हैं। अभी तक मजदूरों के घरों में खादी नहीं पहुँची है। कार्यकर्ताओं की खादी भी सारी खुद की बनाई नहीं होती। अगर इस चीज को हम यहां पर सिद्ध नहीं कर सके तो हमारी शोधक बुद्धि की कमी समझनी चाहिए। हमारे लोग

भिन्न-भिन्न उद्योगों में लगे हुए हैं, यह सही है। लेकिन जिन्हें दूसरा कोई उद्योग नहीं है वे ही सूत कातें, हमारा यह उद्देश्य नहीं है। हमारा उद्देश्य तो यह है कि कपड़ा पहनने वाला हरएक काते और कता सूत बुनकरों से बुनवाए। हमारी बस्ती में इस चीज को सिद्ध करने की हमें कोशिश करनी चाहिए।

वैसे ही यहां महिलाश्रम है, जहां बहनें सूत तो कातती हैं, लेकिन वे भी खादी-भंडार से खादी खरीदती हैं। महिलाश्रम को खादी के बारे में पूर्ण स्वावलम्बी होना चाहिए। सूत सब लड़कियों से ही बुना जाना चाहिए। इसीमें शिक्षण भरा है, इसकी अनुभूति जीवन में आनी चाहिए। तभी जो तेज गांधीजी के लोगों द्वारा अपेक्षित है वह वे बता सकेंगे।

यही बात कालेज के विद्यार्थियों के बारे में भी कह सकते हैं। उनमें यदि चेतना निर्माण हो जाय और वे खादी-जीवन सिद्ध करने में अपनी शक्ति और बुद्धि लगा देंगे तो वे पुरुषार्थी और गरीबों के सेवक बन जायंगे।

एकता के लिए हम कोई बाहरी चिह्न बनाते हैं। लेकिन इससे बढ़कर दूसरा कोई भी चिह्न नहीं हो सकता। इसके द्वारा विधायक शक्ति पैदा होगी, जिससे आज की हवा में जो हिंसा भरी है उसका हम प्रतिकार कर सकेंगे।

हमें बहुत काम रहता है, इसलिए सूत कातने को समय नहीं रहता, ऐसा मानना आत्मवंचना करना

होगा। गांधीजी का उदाहरण हमारे सामने है। वे अनेकविध कार्यों में दिनभर व्यस्त रहते थे, फिर भी कातने के लिए समय निकाल सकते थे।

४ फरवरी '४८] [प्रार्थना-सभा : शांतिकुटीर, गोपुरी

: ६ :

विज्ञान और अहिंसा

गांधीजी की हत्या के विषय में दुनियाभर के महान् पुरुषों ने अपने शोक-उद्गार व विचार प्रकट किए हैं। एक देश के मुख्य प्रधान ने कहा है कि यह घटना बताती है कि गये महायुद्ध ने मानवों में पशुता का कितना प्रचार किया है। उसी महायुद्ध के एक बड़े सेनापति मैकआर्थर ने कहा है कि हमें गांधीजी के विचारों का आश्रय लेना ही पड़ेगा और उसके बगैर दुनिया को शांति नहीं मिलेगी। चूंकि ये उद्गार एक सेनापति के हैं, ध्यान खींचते हैं।

कहीं से भी हो, हिंसा की हवा हिन्दुस्तान में आ गई है। इतने बड़े देश में अनेक विचार-भेद और विवाद संभव हैं। इन विवादों को निपटाने में हिंसा को मान्यता मिल गई तो केवल अनर्थ ही है। यह बात समझ में आ जानी चाहिए; लेकिन नहीं आती है। बड़े-बड़े विचारक कहते हैं कि आखिर हमें अहिंसा का ही आश्रय लेना होगा; लेकिन अभी तो हिंसा के

बिना नहीं चलेगा। पर हमें यह समझना चाहिए कि अहिंसा आखिर का धर्म नहीं, अभी का है; आखिर का भी है; बीच का भी है; हमेशा का है। लेकिन उसकी अत्यंत आवश्यकता अगर कभी है तो वह अभी है।

मैं तो कहता हूं कि अभी अहिंसा बनाम हिंसा के बीच चुनाव करने का सवाल नहीं है। चुनाव तो विज्ञान और हिंसा के बीच करना है। विज्ञान और हिंसा दोनों साथ नहीं चलेंगे। दोनों मिलकर हमें खा जायंगे। अगर हिंसा पर कायम रहना है तो विज्ञान को छोड़ दीजिए, और पुराने जमाने में चले जाइए, जिससे हिंसा चलेगी तो, कम-से-कम, आज के जैसा नुकसान नहीं करेगी। अगर विज्ञान को रखना है तो हिंसा को खतम करना चाहिए। विज्ञान में महान् शक्ति है और अगर हिंसा छोड़ दें तो विज्ञान की मदद से दुनिया पर स्वर्ग को उतार सकते हैं। पर विज्ञान के साथ हिंसा को जोड़ देंगे तो वह मानव को ही खतम करेगा। इसलिए जो भी विज्ञान की कदर करता है उसे हिंसा के खिलाफ आवाज उठानी चाहिए। शिक्षण-शास्त्र को भी यही समझना है। हिंसा उसकी वैरी है। जहां हिंसा आई वहां शिक्षण तो हो ही नहीं सकता। समाज-शास्त्र को भी यही समझना है। समाज का आधार हिंसा नहीं, अहिंसा ही है। अहिंसा के बगैर समाज-शास्त्र ही मिट जाता है। इस तरह से सोचेंगे तभी यह हिंसा का असुर हट सकता है।

बापू गये और उनके स्मारक की चर्चा चल रही है। जो भी स्थूल स्मारक होंगे उनसे हमारी हँसी होगी, अगर हम अहिंसक जीवन सिद्ध नहीं करते। इसलिए इन तेरह दिन में हम आत्म-मंथन करें और जीवन में सुधार करें।

एक भाई ने लिखा है कि हमें प्रायश्चित्त करना चाहिए। वह क्या हो? अगर हमारे चित्त के किसी कोने में भी यह शंका रह गई हो कि हिंसा से कुछ भी लाभ होता है तो उसे हम निकाल दें। यही उत्तम प्रायश्चित्त है। पर यह बोलने की बात नहीं है। बोलने से यह होनेवाली भी नहीं है।

वैसे मैं बोलने का आदी नहीं हूं और बोलने से मुझे हमेशा अरुचि रही है। इस समय यहां बोलना तो मुझे भार ही मालूम होता है। फिर भी सहधर्मी बैठे हैं; उनसे बोलता हूं तो अपना संकल्प दृढ़ हो जायगा, इस खयाल से बोल रहा हूं। अपने से ही बात करने-जैसा कर रहा हूँ।

५ फरवरी '४८] [प्रार्थना-सभा : शांतिकुटीर, गोपुरी

: ७ :

राम से नाम बड़ा

आज रामायण में हमने जो सुना उसमें एक महान् विचार है। उसमें कहा गया है कि रूप से

नाम बड़ा है। रूप तो चंद रोज के लिए होता है। उस हिसाब से नाम शाश्वत है। मतलब यह है कि एक व्यक्ति, चाहे रामचंद्र-जैसा भी हो, जो कुछ कर सकता है, उससे बहुत अधिक करने की शक्ति नाम में होती है। रूप यानी व्यक्ति और नाम यानी विचार। व्यक्ति भी बड़ा होता है, क्योंकि उसमें कोई विशेष विचार रहता है। अर्थात् वह व्यक्ति उस विचार के बाह्य प्रकाशन का निमित्त होता है। फिर भी शक्ति तो विचार में भरी है। इसका अनुभव भी आता है। व्यक्ति का अस्तित्व कुछ अंशों में विचार को मददरूप होता है, वैसे उससे विचार को बाधा भी पहुँच सकती है। जब व्यक्ति हट जाता है, शुद्ध विचार ही रहता है। इसलिए तुलसीदासजी ने समझाया कि राम से भी बढ़कर नाम है। राम ने जिन पतितों को तारा, उनकी तो गिनती है, पर नाम ने जो तारे हैं, और आगे भी जो तारे जायंगे, उनकी गिनती नहीं। यह विचार का सामर्थ्य तुलसीदासजी ने नाममहिमा के द्वारा हमारे सामने रक्खा है। आखिर मनुष्य को शांति भी विचार से और विचारसूचक नाम से, जितनी मिल सकती है उतनी दूसरी किसी चीज से नहीं मिलती। इसलिए नाम-स्मरण की महिमा गाई गई है। नाम-स्मरण से सहज ही हृदय-परिवर्तन हो जाता है। यह सब विचार-चिंतन का फल है। उससे मार्ग-दर्शन भी मिल जाता है। हमने देखा है कि संतों के जीवन-काल में वे जितने समर्थ नहीं थे उससे कहीं

अधिक शक्तिशाली वे जीवन-समाप्ति के बाद बन गये; क्योंकि स्थूल-रूप मिट गया और उसके साथ जो कमियाँ थीं वे भी मिट गईं। परिशुद्ध दिव्य अंश ही रह गया। लेकिन हमारा एक मोह होता है। उसको क्या कहें? दर्शन-मोह कह सकते हैं। उसके कारण जब रूप मिटता है, एक क्षण के लिए अंधेरा-सा छा जाता है; पर प्रकाश मिटता नहीं। हम स्लेट पर अक्षर लिखते हैं और बाद में उन्हें मिटा देते हैं। फिर भी उनका अर्थ नहीं मिटता, यह हम जानते हैं। उसी तरह किसी व्यक्ति के द्वारा जो विचार प्रकट हुआ, वह उस व्यक्ति के मिट जाने से नहीं मिटता है; बल्कि विचार का प्रकाश अधिक स्वच्छ होता है।

बापू के जीवन-काल में उनके विचारों में हमारी श्रद्धा थी। वह इस घटना से कम होनेवाली नहीं है; बल्कि हमारी श्रद्धा में जो भी कमी थी, और हिचकिचाहट थी, वह मिट जानवाली है। और शायद इसीलिए ऐसी घटनाएं भगवान की योजना में रहा करती हैं। "शायद" इसलिए कहता हूं कि, ईश्वरी योजना को हम निश्चयपूर्वक नहीं जान सकते हैं। वह हमारी बुद्धि-शक्ति से परे है। इसलिए हमें उस चिंता में नहीं पड़ना चाहिए। ऐसी घटनाओं से हमें आंतरिक बल क्या मिल सकता है यही सोचना चाहिए। वैसा सोचते हैं तो बहुत मिल जाता है। आज सुबह चिंतन कर रहा

था तो यह विचार सूझा। वही तुलसीदासजी के वचनों का आधार लेकर आपके सामने रख दिया है।

६ फरवरी '४८] [प्रार्थना-सभा : शान्तिकुटीर, गोपुरी

: ८ :

गांधीजी का स्मारक

गांधीजी के स्मारकों का विचार अभी लोग कर रहे हैं। गांधीजी का जीवन अत्यन्त व्यापक था। जीवन की बहुत सारी शाखाओं से सम्बन्धित था। इसलिए तरह-तरह के स्मारक होंगे। राष्ट्र की तरफ से भी कोई विशेष स्मारक बनेगा। लेकिन इन सब स्थूल स्मारकों से वास्तविक स्मरण का कार्य नहीं हो सकेगा। मुझे तो डर है कि उन स्मारकों से मुख्य वस्तु दृष्टि से ओझल भी हो सकती है। बहुत दफा ऐसा होता है कि किसी विशेष अवसर पर भावनाओं की लहर-सी पैदा हो जाती है। फिर उन भावनाओं के समाधान के लिए मनुष्य कुछ बाहरी कार्य कर लेता है और वह लहर धीरे-धीरे मिट जाती है। दुःख का आवेग आने पर गम्भीर मनुष्य उस आवेग को अन्दर छिपाता है और उससे ताकत पैदा करता है। जहां ऐसी गंभीरता नहीं होती वहां उस दुःख का प्रकाशन विलाप के या अश्रुओं के द्वारा होता है और फिर चित्त का समाधान हो

जाता है। इसी तरह पूज्य बुद्धि के कारण मनुष्य कुछ क्षण के लिए अभिभूत हो जाता है, और उसका बाह्य प्रकाशन करके शांत हो जाता है। मैंने ऐसे कई लोग देखे है जो ऐसे मौकों पर रात-रात भर भजन करते हैं। भजन का एक आवेग होता है। लेकिन उसका जीवन पर कोई खास परिणाम हुआ हो ऐसा नहीं दीखता, सद्भाव का अंश उसमें भले ही हो। पर वह एक आवेग ही होता है और वह भजन उस आवेग के समाधान का प्रकार होता है।

लेकिन हमें ऐसा नहीं होने देना चाहिए; बल्कि गंभीरता से सोचने की वृत्ति रखनी चाहिए। जीवन का ही परिवर्तन होना चाहिए। हमारा जीवन पापी है, इसका अनुभव होना चाहिए, और वह पापी न होता तो जो घटना घटी है वह न घटती। एक साथी ने मुझसे पूछा, "गांधीजी-जैसे एक महान् पवित्र मनुष्य के ऊपर किसी हत्यारे का हाथ ही कैसे चला?" यह एक विचार की बात है। मैंने कहा, "गांधीजी एक व्यक्ति थे ही कहां? वे तो हम सब लोगों का बोझ उठाये हुए थे। हमारे जीवन मलिन हैं, इसी कारण यह हत्या हुई। अगर वे एक व्यक्ति होते, हमारा जिम्मा उन्होंने न उठाया होता तो दूसरी बात होती। लेकिन क्योंकि उन्होंने हम सबका जिम्मा उठाया और अखीर तक उसे निभाते गये, इसलिए इस हत्या की जिम्मेदारी हमारी है। यह जानकर जो विचार-दोष हमारे में हों उन सबको

निकालना चाहिए और जीवन में वैसा परिवर्तन कर लेना चाहिए, नहीं तो केवल बाह्य स्मारक, फिर वे कितने भी उपयुक्त क्यों न हों, बनायेंगे तो उस काम को वे नहीं करेंगे जिसके लिए कि हमें तैयार होना है। और इस तरह तैयार हुए बिना इस घटना का प्रायश्चित्त नहीं होगा।

७ फरवरी '४८] [प्रार्थना-सभा : गोपुरी

: ६ :

स्मारक में विवेक-बुद्धि

कल मैंने स्मारकों के बारे में कहा था कि बाह्य स्मारकों की धुन में अन्दर की वस्तु को हम न भूल जायं। फिर भी बाह्य स्मारक तो चलेंगे ही। उनमें भी विवेक करने की आवश्यकता है। मेरे पास दो-तीन पत्र आये हैं जिनमें ऐसे स्मारकों के विषय में सूचनाएँ हैं। एक सूचना यह है कि यथासम्भव हर गांव में गांधीजी का मन्दिर हो। उनमें गांधीजी की और कस्तूरबा की मूर्ति ही रहे। सूचना करनेवाले की भावना की कदर करते हुए भी मुझे कहना चाहिए कि ऐसे कार्य को मैं खतरनाक मानता हूं। आज हिन्दुस्तान में ऐसे भी मनुष्य हैं जिनके लिए उनके शिष्यों ने अवतार होने का दावा किया है। गांधीजी के बारे में ऐसी मूढ़ भक्ति हम न रखें। वे एक मानव थे

और मानव ही रहे। और उनको वैसे ही रहने देने में हमारे लिए अधिक लाभ है। ऐसा करने से एक सज्जन का चित्र हमारे सामने रहेगा, एक नैतिक आदर्श हमें मिलेगा, जिसकी कि आज दुनिया को सख्त जरूरत है। उसके बदले अगर उन्हें देवता बना दें तो उससे देवों को तो कोई लाभ होनेवाला नहीं है, उलटे मानवता का एक आदर्श हम खो बैठेंगे। भक्ति-भावना के लिए पूरी सामग्री पहले से ही हमारे पास मौजूद है। उसके लिए नये देवता की जरूरत नहीं है। जरूरत है जीवन-शुद्धि के एक पावन उदाहरण की। नीति के पुराने उदाहरण वह काम नहीं देते जो नया दे सकता है। वैसा उदाहरण बापू के रूप में हमें मिल गया है। उसको देव बनाकर हम खोएँगे। बदले में दूसरा कोई लाभ नहीं होगा। अनेक संप्रदायों में एक और संप्रदाय का इजाफा करेंगे, उससे क्या मिलेगा? बेहतर है कि जिस राम का नाम लेकर उन्होंने देह छोड़ा, उसीकी हम भी भक्ति करें। उसीका नाम गायें, और राम भी वह नहीं जो दशरथ का पुत्र था, बल्कि वह जिसका नाम दशरथ ने अपने पुत्रों को दिया था, अर्थात् अन्तर्यामी आत्माराम। भगवान के अनन्त गुण हैं। उन गुणों को सोचकर अनेक नाम हम ले सकते हैं। पर किसी व्यक्ति का नाम भगवान के साथ जोड़ न दें; मुझे तो और भी डर है कि जैसे सम्प्रदायों को लेकर भूतकाल में झगड़े हुए हैं वैसी सम्भावना हम इससे

भविष्यकाल के लिए पैदा करते हैं। इसलिए नम्र-भाव रख कर गांधीजी की मानवता का आदर करते हुए उनके गुणों का अनुसरण करें। और कर सकते हैं तो उनमें वृद्धि करें; लेकिन मूर्तियों में वृद्धि न करें।

८ फरवरी '४८] [प्रार्थना-सभा : गोपुरी

: १० :

ईश्वर-अल्ला तेरे नाम

गांधीजी का बलिदान सब धर्मों की शुद्धि और एकता के लिए हुआ है। हिन्दुस्तान में अनेक पंथों और विचारों का समन्वय प्राचीनकाल से होता आया है। हिन्दू और मुसलमान दोनों का जबसे सम्बन्ध हुआ है, दोनों का समन्वय करने की कोशिश कबीर, नानक आदि संतों ने की है। राम-रहीम, कृष्ण-करीम एक हैं, ये उन्हींके वचन हैं। लेकिन अभी-अभी मुख्यतया राजकीय कारण से हिन्दू-मुसलमानों में भेद पैदा किया गया और बढ़ाया गया है। इसलिए फिर से "ईश्वर-अल्ला तेरे नाम" की पुकार गांधीजी ने चलाई और उसीका नतीजा उनका देह-समर्पण है। बीच में जब भेद बढ़ाया गया तब वह अनेक प्रकार से बढ़ गया, नहीं तो विचारों का समन्वय हो रहा था और लोगों में मेल-जोल भी

होता था। लोग एक-दूसरे के उत्सवों में भाग लेते थे और दोनों समाज एकरूप हो चले थे। अब तो भेदभाव के प्रचार के कारण एक दूसरे के बारे में गलतफहमियाँ बहुत बढ़ गई हैं। वे मिटेंगी, मिटनी चाहिए। उसके लिए "ईश्वर-अल्ला तेरे नाम" यह मन्त्र समर्थ है। जो अध्ययन कर सकते हैं वे एक-दूसरे के धर्म का अध्ययन करेंगे और समन्वय पूर्ण होगा। कुछ वर्ष पहले मुझे सूझा कि मैं कुरान का अभ्यास करूं। वैसे तो पहले मैंने कुरान का अंगरेजी तर्जुमा पढ़ लिया था। लेकिन उससे तृप्ति नहीं होती थी; क्योंकि अरबी और अंगरेजी की रचना और शब्द-सृष्टि में बहुत फरक है। इसलिए मूल अरबी में ही कुरान पढ़ने का सोचा। मेरा स्वदेशी धर्म मुझे पवनार छोड़ने नहीं देता था। इसलिए वहीं बैठे-बैठे जैसे हो सका अध्ययन किया। मैंने कुरान के शब्दों के मूल में जाने की कोशिश की। इस सारे प्रयास में मेरी आँखें, जो पहले ही कमजोर हुई थीं और बिगड़ीं; पर मानसिक लाभ मैंने बहुत पाया। श्रद्धा तो पहले ही थी कि सब धर्मों में एकता है; क्योंकि मानव हृदय एक है। और धर्मों की सृष्टि करनेवाले ऊँचे हृदय के होते हैं। लेकिन इस अभ्यास से उस श्रद्धा की साक्षात् अनुभूति हुई। जब मेरा अध्ययन चालू था एक भाई ने, जो कि अच्छे विद्वान् और सद्भावना रखनेवाले भी थे, मुझे लिखा कि 'आप

कुरान का अध्ययन कर रहे हैं तो क्या कुरान में भी अहिंसा आदि बातें पाई जाती हैं?' यानी खयाल यह कि ऐसी बातों का कुरान में पाया जाना एक आश्चर्य की बात हो! कुरान के अध्ययन ने मुझे दिखाया कि इस्लाम भी अत्यन्त सहिष्णु धर्म है, जैसे कि सब धर्मों को होना चाहिए; क्योंकि सत्य के प्रचार में जबरदस्ती हो ही नहीं सकती, जैसे कुरान ने खुद जाहिर किया है। कुरान में मैंने और भी एक भेद पाया। दुनिया का दीन एक है, मजहब अलग-अलग हैं। दीन—यानी धर्म है सत्य की राह चलना। इस सत्य के अभिमुख चलने के पंथ ही मजहब हैं। वे अनेक और अलग-अलग होते हैं। फिर कहा है कि तुम सब एक ही उम्मत हो, एक ही जमात हो। रस्म और रिवाज के फर्क के कारण ही भेद हुए हैं, उनका कोई महत्त्व नहीं। मैं अभी आप लोगों के सामने कुरान का एक छोटा-सा अध्याय बोल गया, जिसमें इस्लाम का सार आ जाता है। उसमें पैगम्बर कहता है कि अस्त को जाते हुए सूर्य को साक्षी रखकर प्रतिज्ञा-वाक्य बोलता हूँ कि जैसे यह सूर्य जवाल—जाने पर है वैसे ही इन्सान की जिन्दगी भी क्षणिक है। जानो कि वे सब इन्सान घाटे में हैं जो कि अपनी जिन्दगी को स्थायी समझ बैठे हैं। सिर्फ़ वे घाटे में नहीं जो कि ईश्वर पर भरोसा रखते हैं, नेक काम करते हैं और एक

दूसरे को बोध देते हैं। हक की राह पर चलने का, यानी सत्य पालन का और सब्र, यानी शांति का । जहां-जहां कुरान में ईश्वर पर भरोसा रखने का बोध आया है वहां नेक काम करना उसके साथ जोड़ ही दिया है। दोनों मिलकर एक वस्तु है। एक अन्दरूनी और दूसरी बाहरी। हक और सब्र, यानी सत्य और शांति, यह थोड़े में इस्लाम है। यही हिन्दू धर्म है, यही ईसाई धर्म, यही सब धर्म। इसलिए, "ईश्वर-अल्ला तेरे नाम" यह छोटा-सा मंत्र सब धर्मों की शुद्धि और समन्वय का मंत्र है। उसका आश्रय लेकर अगर हम सत्य और प्रेम की निष्ठा बढ़ाएँ तो इस बलिदान से एक नया युग शुरू हो सकता है।

९ फरवरी '४८] [प्रार्थना-सभा : गोपुरी

: ११ :

सामुदायिक अहिंसा की आवश्यकता

बापू के विषय में जो शोकोद्‌गार प्रकट हुए हैं उन्हें देखने से एक बात विशेष ध्यान में आती है कि दुनिया के कोने-कोने से और तरह-तरह के विचारवाले लोगों के वे उद्‌गार आये हैं। उनमें कई पुरुष तो ऐसे हैं जो संगठित सरकारें चला रहे हैं और हिंसा-त्मक संगठन भी करते आये हैं। कुछ चिन्तनशील

विचारक हैं। सबने बापू के संदेश को दुनिया के लिए बहुत जरूरी समझा है। मतलब उसका यह है कि आज दुनिया के विचारक हिंसा से तंग आ गये हैं। उससे कैसे छुटकारा पाना, इसका दर्शन नहीं हो रहा है। लेकिन गांधीजी ने सामुदायिक अहिंसा का जो विचार दुनिया के सामने रखा है उसको किसी-न-किसी तरह से और कभी-न-कभी अमल में लाये बगैर छुटकारा नहीं है, और उसको अमल में लाने की शक्यता जितनी भी जल्दी हो सके उतना ही अच्छा होगा, ऐसा भाव उन शोकोद्गारों में है। हिन्दुस्तान के लोगों को उसकी कीमत का भान अभी नहीं है; क्योंकि डेढ़ सौ साल तक जनता जबरदस्ती से निःशस्त्र की गई थी। शायद उसीके कारण शस्त्रों में विश्वास बढ़ गया, उनका मानसिक महत्त्व बढ़ गया। जो चीज अपने पास नहीं रहती उसका मानसिक महत्त्व बढ़ा करता है। सम्भव है कि सामुदायिक अहिंसा के विचार को समझने के लिए जो मनोबल चाहिए, जो कल्पना-शक्ति चाहिए, जो पुरुषार्थ चाहिए, वह हममें कम रहा है। फिर भी गांधीजी का विश्वास था, और हिन्दुस्तान की सभ्यता व संस्कारों को देखते हुए यह आशा की जा सकती है कि इस विचार को पहले हिन्दुस्तान ही अपना सकेगा। इतना तो हुआ है कि पच्चीस-तीस साल से इसका टूटा-फूटा प्रयोग यहां किया गया है, जिससे कुछ लोगों के मन में थोड़ी श्रद्धा बैठी है। दुनिया को

सूझ नहीं रहा है। वह उलझन में पड़ी है। इस हालत में इस मुख्य विचार को हम कहां तक अपना सकते हैं, उसके लिए जो-जो चीजें करनी चाहिए वे हम कहां तक कर सकते हैं, यह गहराई से सोचें। और जो भी शंकाएं हों, उनका विश्लेषण और निवारण करें। इस तरह से चंद लोग भी अगर अपनी निष्ठा दृढ़ कर सकें तो एक विचार-बीज स्थिर होगा। उसमें से फिर वृक्ष पैदा हो सकता है। अगर हमसे यह आशा न की जाय तो किनसे की जाय ? इस विषय में अगर हम ही शंकाशील रहें तो दूसरों से आशा नहीं की जा सकती। इस बारे में सोचता हूँ तो बाकी की सारी योजनाएं, संघटनाएं, सारे काम फीके लगते हैं। अहिंसा का संशोधन और अपनी आत्मशक्ति का निरीक्षण ही अत्यन्त जरूरी मालूम होता है।

१० फरवरी '४८] [प्रार्थना-सभा : गोपुरी

: १२ :

दो स्मरण

मेरी बहनो और भाइयो,

आज जमनालालजी का सातवां पुण्यदिन है, और गांधीजी की मृत्यु का तेरहवां दिन है। ऐसा यह एक योग श्रद्धालु मनुष्य के ध्यान में आता है। जानकी-

देवी ने याद दिलाई कि जमनालालजी से अंतिम बार मिलने के लिए आज के दिन और इसी समय गांधीजी यहां आये थे। उसी तरह गांधीजी के देह की रक्षा सेवाग्राम से आज यहां पहुँच गई है। मतलब इतना ही है कि उन दोनों महापुरुषों के जीवन एक दूसरे में समरस हो गये थे। आज के इस योग से यह सिद्ध करने की जरूरत नहीं है। उनके जीवन ही यह चीज बताते हैं।

गांधीजी यहां—वर्धा आकर पंद्रह साल रहे। उन्हें लाने का श्रेय जमनालालजी को ही है। जहां-जहां से जो-जो पवित्रता वर्धा में लाई जा सकी जमनालालजी लाये। वे भगीरथ की तरह यहां पर गंगा लाये और वर्धा को एक क्षेत्र बनाया। यहां जो अनेक संस्थाएं दिखाई देती हैं वे सब जमनालालजी की ही कृति हैं। गांधीजी विचार करें और जमनालालजी उसे अमल में लायें, ऐसा उनका रिश्ता था। आज जमनालालजी के कुछ पत्र देख रहा था। एक पत्र में उन्होंने लिखा है, "गांधीजी का मार्ग-दर्शन हमें उत्तम मिला है। उनके बताये मार्ग से यदि निष्काम जन-सेवा की तो इसी जन्म में मोक्ष को पा सकेंगे। इसी जन्म में मोक्ष न प्राप्त हुआ तो भी कोई चिंता की बात नहीं। अनेक जन्म लेकर सेवा करते रहने में भी आनंद है। बुद्धि शुद्ध रहे तो बस है।" अपनी दैनंदिनी में उन्होंने यह लिखा है।

वर्धा की सेवा उन्होंने कितने प्रेम से की! केवल

स्वदेशी-धर्म के लिए उन्होंने वर्धा पर प्रेम किया। तुलसी-रामायण में से आज जो भरत का चरित्र गाया गया वह उन्हें बहुत अच्छा लगता था। गांधीजी को भी वह बहुत प्रिय था। अपने देश का 'भारतवर्ष' नाम भी भरत से संबद्ध है। राम के पास रहने को न मिला, फिर भी भरत राम का नाम लेकर उसका काम करता रहा। यह राज्य राम का है, ऐसा मान कर वह उसे चलाता था। कवि ने वर्णन किया है: रामचंद्र वन में गये। तपश्चर्या करके कृश बने। भरत अयोध्या में रहकर ही तपश्चर्या से कृश बना। एक की तपश्चर्या वन में हुई, दूसरे की नगर में। "रामचंद्र वनवास पूरा करके अयोध्या लौट आये। भरत से मिले। तब यह नहीं पहचाना गया कि वन से आया हुआ कौन है और नगर से आया हुआ कौन है।" ऐसा यह भरत का चरित्र उन दोनों ने अपने सामने आदर्शरूप रक्खा था। अब जमनालालजी गये और गांधीजी भी गये हैं। वर्धा के हम और आप नागरिक, जिनकी उन्होंने निरंतर सेवा की उनके पीछे उनकी पुण्यतिथि का दिन मना रहे हैं। इसमें उनके लिए हम कुछ भी नहीं करते हैं। वे तो अपने उत्तम कर्मों से ही पुण्यगति को पा गये हैं। हम हमारी चित्तशुद्धि के लिए यह सब करते हैं।

जमनालालजी और गांधीजी दोनों ने जाति, धर्म आदि किसी प्रकार के भेद न रखते हुए मनुष्य-मात्र सब एक हैं ऐसा समझ कर सेवा की। गरीबों से

एकरूप होने का निरंतर यत्न किया। "परहित बस जिनके मन मांही, तिन कहं जग दुर्लभ कछु नाहीं"—तुलसीदासजी के इस वचन के अनुसार परहित का आचरण करके दुनिया का सबकुछ उन्होंने साध्य किया। ऐसे ये दो आदर्श पुरुष हमारे सामने ही हो गये।

हम अपना स्वार्थ सम्हालें, ऐसी साधारण मनुष्य की भावना होती है। लेकिन कौनसा स्वार्थ तुम सम्हालोगे ? शरीर एक दिन छोड़ कर जाना ही है तो वह लोक-सेवा में चंदन की तरह घिसवाना चाहिए। "जबतक चंदन घिसता नहीं तबतक सुगंध नहीं निकलती।" चंदन यदि घिसेगा ही नहीं तो फिर सुगंध कहाँ ? तब दूसरे पेड़ और चंदन में अन्तर ही क्या ? हमने यदि सेवा न की तो मनुष्य-जन्म में आकर क्या साधा ? खाने-पीने और मजा करने में ही यदि सार्थकता मान ली तो फिर जानवर और मनुष्य में क्या फर्क रहा ? महापुरुषों के नाम हम लेते हैं। वह क्यों ? इसीलिए कि वे अपनी देह की चिंता छोड़ कर सारी दुनिया के हित की चिन्ता करते थे। हर रोज शाम को सोने से पहले विचार करना चाहिए कि आज मैंने अपनी देह के लिए तो कई काम किये हैं, पर दुनिया के लिए क्या किया है ? क्या किसी बीमार की सेवा की है ? या कहीं की गंदगी साफ की है ? या किसी दुःखी को सुख दिया है ? या किसी को कुछ मदद दी है ? इस तरह का विचार

छोटे लड़कों को, बूढ़ों को, युवकों को, स्त्री-पुरुष सब-को करना चाहिए। दिनभर में परोपकार का कुछ काम न किया होगा तो वह दिन बेकार गया, ऐसा समझना चाहिए और कुछ-न-कुछ सेवा करके ही सोना चाहिए।

मेरी आप सब लोगों से प्रार्थना है कि सब अपना जीवन परोपकार में लगा दें और लोगों से यह कहलवाएँ कि "यह तो मर गया, लेकिन हमारे लिए घिस कर मर गया।"

जमनालालजी-श्राद्ध-दिन [प्रार्थना-सभा : गोपुरी
११ फरवरी '४८]

: १३ :

परमात्मा में लय

मेरे भाइयो और बहनो !

एक पवित्र आत्मा परमात्मा में लीन हो गई है और उसके देह का अन्तिम अवशेष भी अब सृष्टि में मिल गया है।

देह के मरने से आत्मा की मृत्यु नहीं होती इस-का प्रमाण आज तुम्हारे-हमारे मन दे रहे हैं ! जो विचार गांधीजी के हृदय में रहते थे, जिनका प्रचार देह के बंधन के कारण मर्यादित हुआ था, वे अब तुम्हारे-हमारे हृदयों में प्रवेश कर रहे हैं। भविष्य में

उनके अनुसार चलने का हम यत्न करेंगे ।

हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई, यहूदी आदि अलग-अलग धर्मों के लोग हमारे भाई-बहन हैं । हमारा यह बड़ा भाग्य है । उसे पहचान कर हम सब प्रकार के भेद-भावों को भूल जायंगे और प्रेम के साथ एकत्र रहेंगे । हरिजन और परिजन यह दुष्ट भेद मिटा देंगे और सब हरिजन हो जायंगे । अपने हाथ से कते सूत की खादी से हमारे शरीर ढांकेंगे, सारे देहात आइने की तरह निर्मल रखेंगे, व्यसन सब त्याग देंगे, सत्य और अहिंसा, यह व्रत लेंगे । यह प्रतिज्ञा पूरी करने का बल भगवान् हमें दे, इतनी ही प्रार्थना ।

१२ फरवरी '४८] [परंधाम पवनार की धाम नदी की पंच-धारा में पू० गांधीजी के रक्षा-विसर्जन के अवसर पर दिया गया प्रवचन । १२ बजे दोपहर

: १४ :

संकल्प

आज धाम नदी के किनारे जो दृश्य देखा वह तो कोई पुनर्जन्म का ही दृश्य था । जब 'ईशावास्य' में बोल रहा था तब की अनुभूति का शब्दों में बयान नहीं हो सकता । आत्मा की व्यापकता के विषय में हमको ज्ञानियों ने सिखाया है । श्रद्धा भी उसपर

बैठती है; लेकिन आज सबको उसकी अनुभूति हुई। अखीर में दो-चार प्रतिज्ञा-वाक्य मैं बोला, वे उपदेश-स्वरूप नहीं थे, संकल्प-स्वरूप थे। काका-साहब ने वह रक्षा का कलश उस स्थान पर रक्खा और उसको भक्ति-भाव से प्रणाम किया। मेरी आंखें उस समय उस कलश पर नहीं थीं; पर जिस भाव से वह प्रणाम हो रहा था, उस तरफ थीं। हम सब भाई, जिन्होंने बरसों एकत्र काम किया है वहाँ इकट्ठे हुए थे और एक स्थूल शरीर के अवशेष को अन्तिम स्थान दे रहे थे। उस सब क्रिया में शोक का तो कोई आभास ही नहीं था। गंभीरता थी और भगवान से नम्र प्रार्थना, कि हमारा संकल्प सिद्ध करने में वह हमें बल दें। समाप्ति के बाद कुछ देहाती भाइयों के साथ उनके गांव के काम के बारे में सोचने के लिए बैठे थे। तब कोटी बाबाजी ने कहा कि आज बिजली-का-सा संचार हुआ है और अब कार्य में एक क्षण का भी विलंब नहीं होना चाहिए। तो गांव वाले उनके साथ एकरूप होते थे, और अनुमति देते थे। अब हम जो सेवक यहां उपस्थित हैं, अपने जीवन की शुद्धि उत्तरोत्तर करते जायं और उन देहाती भाइयों की सेवा में तत्परता से लग जायं तो मुझे विश्वास है कि उनकी तरफ से उत्तम सहकार मिलने वाला है। आज तो इतना ही एक विचार रख देता हूँ। उसकी योजना आगे की जा सकती है।

१२ फरवरी '४८] [प्रार्थना-सभा : गोपुरी

परिशिष्ट*

: १ :

सर्वत्र परमात्म-दर्शन

मेरे प्रिय आत्मस्वरूप भाइयो और बहनो,

मुझे याद तो नहीं है, लेकिन इस स्थान पर शायद मैं पहली बार ही बोल रहा हूं। यहाँ मैं बहुत आया भी नहीं हूं; किन्तु विचार-सम्बन्धी दृष्टि से देखा जाय तो यह कहना होगा कि मैंने यहीं रहने का निरन्तर प्रयत्न किया है।

यह ईश्वर की अपार कृपा कहिए कि वह इस संसार में सदा सत्पुरुषों की कतार भेजता रहा है। एक गया कि उसके पीछे दूसरा आ पहुँचता है और वह आगन्तुक पहले आये हुओं को पीछे छोड़कर आगे बढ़ता है। ऐसा ही एक महापुरुष आया और गया और हम सबको अपना वारिस बना गया।

पिता की जायदाद के (स्टेट के) मालिक तो उसके लड़के बिना कुछ किये-धरे सिर्फ जन्म लेने के हक की वजह से ही हो जाते हैं, लेकिन हमें जो जायदाद मिली है, उसके सच्चे वारिस बनने के लिए तो हमें महान् प्रयत्न करना पड़ेगा। सब सन्तों ने हमें तीन तरह की सिखावन दी है। पहली सिखावन यह कि अपने पड़ोसियों पर प्रेम करो। दूसरी यह कि जो अपने को

* ये तीन प्रवचन उन्हीं दिनों सेवाग्राम में दिये गए थे।

तुम्हारा शत्रु माने उसपर प्रेम करो और तीसरी यह कि वैष्णवों पर, सज्जनों पर, भक्तों पर प्रेम करो, और इन तीनों सिखावनों के लिए हमें आत्मा पर प्रेम करना सीखना जरूरी है। व्यवहार में सदा यह भावना रखनी है कि जो मुझसे मिलने आया, दर्शन देने आया, वह परमात्म स्वरूप ही है। इस अंतिम वस्तु के बिना सन्तों की उन तीनों शिक्षाओं का भली-भांति पालन होना सम्भव नहीं है। दोष मनुष्य-मात्र में होते हैं, गुण भी होते हैं। यदि हम गुण-दोष ही देखते रह जायं तो सर्वत्र परमात्म-दर्शन सम्भव नहीं है। इस धरती पर जो कोई, या हम, शरीर से रहने के अधिकारी बने हैं उन सबको यह ध्यान में रखना चाहिए कि हमारे आसपास रहनेवाले और हम भी परमात्मा के अंश हैं। इसी भावना को हमें दृढ़ करना चाहिए। इस एक मन्त्र का आधार रखने से शेष सारे आदेश अपने आप पल जायंगे।

यहां अपने अनेक संस्थाएं हैं, जिनमे अनेक प्रकार के मतभेद भी होते थे; परन्तु उन्हें मिटानेवाला और निश्चित निर्णय देनेवाला एक था। वह तो गया। अब कौन है? हमें समझना चाहिए कि जो गया उसकी शक्ति मर्यादित थी और अब जो है वह अनन्त शक्तिमान है। उसका और हमारा सरल सम्बन्ध है। जिससे भेंट हुई वह भगवान ही है, यह खयाल रहा कि मतभेद और झगड़े का सवाल ही जाता रहा। सारे राग-द्वेष का खातमा हो गया समझिये।

चित्त में विकारवाले क्षण को व्यर्थ गया और विकार-रहित स्थिति में बीते क्षण को सार्थक मानो। बाहर से तो हमें अनेक काम करने हैं; क्योंकि शरीर उसीके लिए है। शरीर के अस्तित्व से ही यह सिद्ध होता है। इसलिए उन्हें तो हमें करना ही ठहरा। लेकिन हमारा समय सार्थक हुआ या नहीं, इसकी जांच बाहरी काम के भरोसे न छोड़ें।

चित्त कितने क्षणों निर्विकार रहा, इससे जांचें। बापूजी सुबह से शाम तक के काम की डायरी लिखने को कहते थे। यदि हम इस तरह की मानसिक डायरी रखें तो उसमें यह नोट करना चाहिए कि उस काल में भगवद्भावना कितने समय रही। यों करते-करते भगवान की दया से यदि यह दृष्टि हमारी आँखों में स्थिर हो जाय तो समझ लीजिए कि हम पा गए।

आश्रमवाले कहते हैं कि अब उन्हें मुझसे काम लेना है; इसमें कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन जैसा मैं कह चुका हूँ उस दृष्टि से जैसा काम होगा वैसा एक-दूसरे का आधार लेकर भी नहीं होगा। अन्त में मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि जो भी स्त्री, पुरुष, बालक आँखों के आगे आयं उन्हें भगवान-स्वरूप ही देखूं। ऐसा दृढ़ संकल्प इस भूमि पर बैठकर हम कर जायं।

८ फरवरी '४८] [प्रार्थना-सभा : सेवाग्राम आश्रम

: २ :

हमारे चौकीदार

गांधीजी के बाद हमारे मार्गदर्शक चौकीदार हमारे ग्यारह व्रत हैं। गांधीजी की मौजूदगी में भी यही हमारे चौकीदार थे। कल जिस विषय पर हमने विचार किया उसके द्वारा ये सारे व्रत अपने आप् पूरे होते हैं। सर्वत्र परमात्मदर्शन का प्रयत्न करन पर सत्य स्वयं सिद्ध हो जाता है। फिर छिपाने को बाकी क्या बचता है? वैसे ही हिंसा, क्रोध आदि भी असम्भव हो जाते हैं। चारों ओर जब ईश्वर-ही-ईश्वर है तब हम हिंसा किसको करेंगे? किसपर गुस्सा होंगे? उस दशा में किसी विकार की या पाप-बुद्धि की गुंजायश ही नहीं रह जाती। तुलसीदासजी कहते हैं, "जहं-तहं देख धरे धनु-बाना।" मतलब, भक्त सर्वत्र धनुषधारी रामचन्द्र को जाग्रत पाता है। उस धनुष-बाण के सामने चित्त में कोई भी विकार ठहर नहीं सकता। फिर भी इन व्रतों के पालन के निमित्त हमें स्वतन्त्र यत्न करना चाहिए; क्योंकि हमने अगर अपने विकारों को पहचाना ही नहीं तो काम कैसे बनेगा? इसलिए सूक्ष्मता से चित्त की जांच करनी चाहिए। सर्वत्र प्रभु-भावना हुई या नहीं, इससे चित्त में विकारों को कितना स्थान मिला, इसका अंदाज मिलता है। इसीके लिए हमने ये ग्यारह चौकी-दार रखे हैं और जब आश्रम में व्रत-निर्वाह की शर्त है तब दुनिया भी हमसे यही उम्मीद रखेगी कि आश्रम में

और कुछ हो या न हो, इन व्रतों के पालन का पूरा प्रयत्न तो होना ही चाहिए। यहां आनेवाले दर्शक बहुत करके श्रद्धा से ही आयंगे। वे बिचारे हमारी परीक्षा क्या करेंगे? परन्तु हमारे व्रत-पालन का सूक्ष्म परिणाम यहां की हवा में फैलना चाहिए और हरएक को उसका स्पर्श होना चाहिए। अतः हमें सजग रहकर यहाँ, यानी अपने चित्त का, वातावरण पूरा शांत रखने का प्रयत्न करना चाहिए। यहां किसी तरह भी कठोर वचनों का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। मिथ्या भाषण को तो बात क्या, मिथ्या विचार भी नहीं होना चाहिए। मनोवृत्ति ऐसी होनी चाहिए कि दूसरों को गलती दिखाई ही न दे, कोई अपनी भूल हमसे कहे तो वह हमें तुच्छ लगनी चाहिए और दुनिया को दृष्टि में तुच्छ लगनेवाली अपनी गलती हमें पहाड़ के समान लगनी चाहिए। हमारे आस-पास कहीं झगड़ा-फसाद चलता हो तो वहां हमारी उपस्थिति से 'स्नेहन' का काम होना चाहिए। यत्र में रगड़वाली कई जगहें होती हैं। वहां तेल देने से रगड़ कम हो जाती है। वही नतीजा हमारे हाथों आना चाहिए।

हम ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करेंगे। हममें कोई अविवाहित होगा, कोई विवाहित होकर वानप्रस्थी होगा। बाकी दुनिया हमारे आस-पास की भी गृहस्थाश्रमी होगी। हमें चाहिए कि गृहस्थाश्रमी को सीताराम और अपने को हनुमान मानें। यानी हनुमान को सीताराम के लिए जो आदर था वैसा ही दुनिया के स्त्री-पुरुषों के लिए हमारे मन में होना चाहिए

और हम सीताराम की सेवा में हनुमान को जिस नम्र-भाव से हाजिर रखने की तस्वीरें खींचते हैं वैसे ही हमें उनकी सेवा के लिए नम्रतापूर्वक तत्पर रहना चाहिए। ब्रह्मचारी व्रतधारी मनुष्य सबकी सेवा के लिए सदा हाजिर रहनेवाला सेवक होता है, सदा नम्र और तत्पर। उसके लिए संसार भले ही आदर रखे, पर वह तो अपने को सीताराम के चरणों का रजकण ही मानेगा। यह वातावरण रहे और कुछ-न-कुछ शरीर-श्रम तथा जनसेवा बनती रहे तो फिर दूसरा कोई बड़ा—जगत जिसे बड़ा कहता हैं वह—काम हो या न हो, इसकी परवाह नहीं है। समझदार दुनिया हमसे यही अपेक्षा रखती है। हिंदुस्तान का शासनकार्य चलानेवाले लोग आश्रम में क्यों नहीं हैं? यह प्रश्न नहीं पूछा जायगा। 'स्थितप्रज्ञ-दर्शन' में मैंने लिखा है कि हरएक का नेता बनना संभव नहीं है, लेकिन हरएक व्यक्ति स्थितप्रज्ञ बन सकता है। क्योंकि उसके लिए जो मसाला चाहिए वह भीतर दी मौजूद है। बाहर की किसी सामग्री की आवश्यकता नदीं है।

यह मैंने अपनी श्रद्धा जताई है। हम उससे कितनी दूर हैं, यह तो देखते ही हैं। लेकिन नित्य हम स्थितप्रज्ञ के लक्षण गाते हैं तो हमें उसके अनुसरण की कोशिश करनी है। थोड़े में यह सार है।

६ फरवरी '४८] [प्रार्थना-सभा : सेवाग्राम आश्रम

❀ हिन्दी में 'सस्ता साहित्य मण्डल' द्वारा प्रकाशित हुई है।

: ३ :

कर्मयोग-निष्ठा

परसों और कल हमने जिन विचारों की चर्चा की है उनके अमल के लिए हमें एक आचारदृष्टि भी रखनी चाहिए। वह क्या है ? निरन्तर कुछ-न-कुछ करते रहना, एक क्षण भी व्यर्थ न खोना। यह कोई नई बात नहीं है। गीता में हमें यह शिक्षा मिलती है। गीता सिखाती है कि कर्म से भगवान की पूजा होती है और वह करनी चाहिए। लेकिन बीच के जमाने में संन्यास, भक्ति, ध्यान, इत्यादि के नाम पर कर्म टालने की वृत्ति हिंदुस्तान में आगई। हमारी वृत्ति उससे भिन्न है। हम कर्म से परमेश्वर की पूजा करेंगे, वाणी और चिंतन से भी करेंगे। लेकिन दिन का खास हिस्सा तो सेवाकार्य में ही लगायेंगे।

प्राचीनकाल में मठ या विहारों में लोग भिक्षा-वृत्ति पर रहते थे। भिक्षा के लिए निकलते भी थे। हम भी भिक्षा पर रहते हैं। भिक्षा के लिए निकलते नहीं हैं। समाज अपने आप जो कुछ दे देता है उसपर संतुष्ट रहते हैं। कोई भी चीज अपनी है, यह नहीं मानते। पर भिक्षा-वृत्ति का अर्थ यह नहीं है कि हम सेवाकार्य का त्याग करें, किन्तु सेवाकार्य करते हुए फल छोड़ना और वृत्ति को अनासक्त रखने का प्रयत्न करना यह उसका अर्थ है। इससे शरीर को आरोग्य

ग्रौर चित्त को प्रसन्नता प्राप्त होगी। सूर्यनारायण क्षण भर भी विश्रांति नहीं लेते। जगत को सतत प्रकाश देते रहते हैं; किन्तु जगत के व्यापारों से ग्रलिप्त रहते हैं। यह ग्रादर्श गीता ने हमारे सामने रखा है। उसीको गांधीजी ने जीवन में प्रत्यक्ष ग्राचरण द्वारा हमारे सामने रखा।

ग्रक्सर ऐसा होता है कि महान् पुरुष के चले जाने के वाद उसके शिष्यों को भी समाज में एक प्रकार की प्रतिष्ठा मिलती है। उसमें खतरा है। उससे खबरदार रहना चाहिए। भाग जाना खबरदारी का रास्ता नहीं है समाज हमारा ग्रादर करता है तो हमें जाग्रत रहना चाहिए, ग्रालस्य में न पड़ जाना चाहिए। किसी-न-किसी वजह से लाखों लोगों को हम काम न करते हुए खाते देखते हैं। हमारी यह निष्ठा है कि काम किये बिना खाने का ग्रधिकार ही नहीं है। समाज से कम-से-कम लें ग्रौर समाज को ग्रधिक-से-ग्रधिक दें। यह तभी होगा जब हम काम को पूजा-रूप मानेंगे। उद्योग की थकावट उद्योग से ही दूर करनी है। मतलब एक काम करके थके कि दूसरा उठाया। इस प्रकार निरलस श्रम करते हुए रात को निर्दोष, निःस्वप्न निद्रा लें। हम जागृति में ग्रतंद्रित रहेंगे तो हमारी नींद भी निःस्वप्न होगी, यह हमारा ग्रादर्श है। उद्योग ही विश्रांति है, उद्योग ही काम है ग्रौर उद्योग ही भक्ति है, ऐसी कर्म-निष्ठा रखने पर ही चित्त-शुद्धि होगी ग्रौर मैं मानता हूँ कि ग्राज तक

न मिलने वाली प्रेरणा हमें आगे मिलेगी।

बापू की मृत्यु जिस प्रकार से हुई है उसमें हमपर भगवान की निस्सीम दया है। सब तरह से हमारी शुद्धि होने वाली है, इसलिए ईश्वर ने यह घटना घटाई है।

१० फरवरी' ४८] [प्रार्थना-सभा : सेवाग्राम आश्रम

विनोबा-साहित्य

विनोबा के विचार (दो भाग) प्रति भाग १॥)

विनोबाजी के निबन्धों व व्याख्यानों का महत्त्वपूर्ण संग्रह।

गीता-प्रवचन अजिल्द १), सजिल्द १॥।)

गीता के प्रत्येक अध्याय का बड़ी ही सरल,सुबोध शली में विवेचन।

शांति-यात्रा अजिल्द २॥), सजिल्द ३॥)

गांधीजी के देहावसान के बाद अनेक स्थानों में दिये गये विनोबाजी के प्रवचन।

स्थितप्रज्ञ-दर्शन १॥)

गीता के आदर्श पुरुष स्थितप्रज्ञ के लक्षणों की व्याख्या।

ईशावास्यवृत्ति ।॥)

ईशोपनिषद् की विस्तृत टीका।

ईशावास्योपनिषद् =)

मूल श्लोकों सहित ईशोपनिषद् का सरल अनुवाद।

सर्वोदय-विचार १=)

सर्वोदय-विषयक लेखों व प्रवचनों का संग्रह।

स्वराज्य-शास्त्र १)

प्रश्नोत्तर के रूप में विनोबाजी ने स्वराज्य की परिभाषा, अहिंसात्मक राज्य-पद्धति एवं आदर्श राज्य-व्यवस्था का खाका खींचा है।

भूदान-यज्ञ ।)

देश में भूमिहीनों की दुर्दशा से प्रभावित होकर भूमि के समवितरणार्थ दिये गए दो मूल्यवान प्रवचन।

राजघाट की संनिधि में ।॥)

भूदान-यज्ञ के सिलसिले में दिल्ली में दिये गए विनोबाजी के प्रवचन। इनमें आज की अनेक ज्वलन्त समस्याओं पर विचार किया गया है।

सर्वोदय-यात्रा १।)

सर्वोदय-सम्मेलन के अवसर पर पैदल-यात्रा में दिये गए सन्त विनोबा के प्रवचनों का संग्रह।

गांधीजी को श्रद्धांजलि ।=)

गांधीजी के प्रति विनोबाजी की सर्वोत्तम श्रद्धांजलि।

जीवन और शिक्षण २)

जीवन के समग्र विकास के लिए किस प्रकार की शिक्षा आवश्यक है, उसका दिशा-दर्शन करानेवाली पस्तक।